लेख

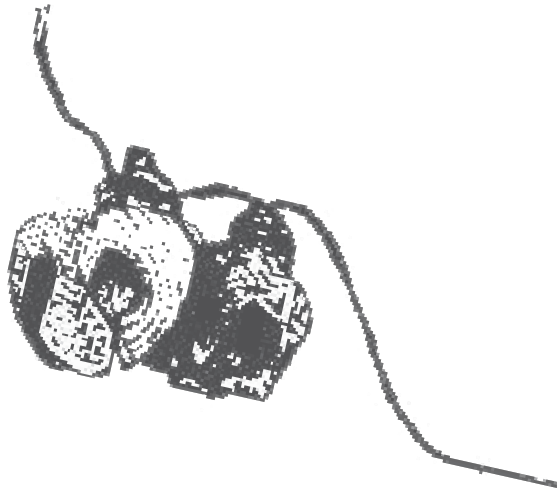

युग दर युग नैतिकता
पुरानी रणनीतियां, नई धमकियां

मंजिमा भट्टाचार्य

औरतों पर नैतिक नाकाबंदी सदियों से चली आ रही है। परिचित पुराने प्रयासों में शामिल हैं- आने जाने पर कड़ी निगरानी, वे कैसे बोलती हैं, क्या पहनती हैं, किससे बोलती हैं वगैरह।

पाबंदियों के कुछ नए रूप भी सामने आए हैं- कानूनी विधान के ज़रिए (मुंबई में डांस बार बंद करना) बलपूर्वक हिंसा (शिवसेना द्वारा 'वैलंटाइन डे' पर एकजुट लड़के लड़कियों को जबरन अलग करना), संस्थागत निर्णय का दबाव (विश्वविद्यालय में लड़कियों के पहनावे पर प्रतिबंध)। इसके अलावा एक अस्पष्ट और सदाचारी सामाजिक दबाव है जो सती और विधवा बहिष्कार जैसी कुप्रथाओं को न सिर्फ़ अनदेखा कर देता है बल्कि इन्हें वैध करार भी दे देता है- कभी परम्पराओं को पश्चिमीकरण से बचाने के नाम पर तो कभी संस्कृति, भारतीयता और सभ्यता को कायम रखने के नाम पर।

इन तमाम वंचनाओं की मिलीभगत औरतों के लिए अन्यायी परिस्थितियां पैदा करती हैं। एक न्यायाधीश जो बलात्कार की शिकार लड़की को अपने बलात्कारी से विवाह करने का फ़ैसला सुनाता है, दरअसल न्याय की आड़ में अपनी नैतिक मंशा को अंजाम दे रहा है। राज्य भी दोहरी नैतिकता की चालबाज़ियों से परे नहीं है। एक ओर किसी भी वस्तु को बेचने के लिए औरतों की देह का प्रदर्शन जायज़ ठहराया जाता है, तो वहीं दूसरी ओर साम्प्रदायिक दंगों में औरतों के यौन शोषण को 'सेंसर' कर देने की साजिश हम बखूबी जानते हैं।

नैतिकता, संस्कृति और परम्परा के रक्षक औरतों के हक़ों के सवाल पर निरंतर सन्नाटेदार ख़ामोशी साधे रहते हैं। जब दहेज की वेदी पर औरत ज़िंदा जलाई जाती है तब ये संस्कृति के पहरेदार कहां छिपे रहते हैं? क्यों इन्हें सांप सूंघ जाता है जब लड़कियों की घटती संख्या के आंकड़े अखबार की सुर्खियों में नज़र आते हैं? दिन-ब-दिन घरेलू हिंसा की बढ़ती वारदातों पर इनका ध्यान क्यों नहीं जाता?

नारीवाद और महिला अधिकार को अक्सर समाज विरोधी और नैतिकता का शत्रु माना जाता रहा है। इसका पुरज़ोर विरोध भी किया जाता है।

इस संशय और बौखलाहट की जड़ों को ढूंढने तथा एक सामाजिक- राजनैतिक हथियार के रूप में नैतिकता के इस्तेमाल के सफ़र को करीब से जानना-समझना ज़रूरी हो गया है। आज नैतिकता के प्रश्न एक नए आयाम के साथ हमारे सामने दोबारा खड़े हुए हैं, जिनके चलते विश्व स्तर पर जन आंदोलनों के सभी फायदे लुप्त होते जा रहे हैं तथा डर और आशंका का माहौल पनपता मालूम देता है।

नैतिकता - एक ऐतिहासिक झलक

नैतिकता की बहस औरतों, खासतौर पर उनकी यौनिकता पर केंद्रित होती है। अक्सर यह अल्पसंख्यकों या 'दूसरी' कौम पर आधिपत्य के हथियार स्वरूप भी इस्तेमाल की जाती है। पूर्वाग्रहों से ग्रस्त ये धारणाएं, किसी एक समूह या व्यक्ति की कमतरी साबित करने के तर्क के रूप में पेश की जाती हैं।

इतिहास गवाह है कि नैतिक उद्घोष समुदायों व औरतों की सीमा रेखाओं को तय और बरकरार रखने में मदद करती हैं। यह धर्म, परिवार, राष्ट्र, नस्ल, जाति, समुदाय आदि पितृसत्तात्मक संरचनाओं को चुनौती देने वाली कोई भी हरकत को 'उग्र नैतिक उल्लंघन' के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

नैतिकता एक अचल तथ्य नहीं है। क्या यह हैरानी की बात नहीं है कि एक दौर में वृहद अनैतिक समझा जाने

वाला औरतों का बर्ताव चाहे वह नृत्य, मंच पर अभिनय हो, पतलून पहनना या साइकिल की सवरी करना हो, को आज सहज समझा जाता है। या फिर एक प्रांत या देश में अनैतिक माने जाने वाले आचरण किसी दूसरे देश या समुदाय के लिए पूर्णतः नैतिक हो सकते हैं। यह फ़र्क़ नैतिकता की धुंधली और ढुलमुल सीमाओं का सूचक है। क्या यह ठोस सबूत नहीं है कि नैतिकता के दायरे समाज द्वारा रचे-गढ़े होते हैं।

नैतिक चिंताओं के पीछे औरत पर नियंत्रण तथा उसकी यौनिकता पर काबू करने की हसरत दबी है। नैतिकता पितृसत्ता का मूल हथियार है जिसका 'व्यक्तिगत' दायरों में इस्तेमाल करके यह साबित किया जाता है कि औरत का व्यवहार क्या होना चाहिए। नैतिकता की यह आधारशिला कई तरीकों से औरतों की ज़िंदगी पर अपना असर डालती है। यह औरत को समाज द्वारा तय लक्ष्मण रेखा के ऊपर चलने को मजबूर करती हैं। इस दायरे से बाहर निकलने पर औरत को कटघरे में खड़ा कर दिया जाता है, जहां अपने व्यवहार की जबावदेही उसे 'अच्छी' और 'बुरी' औरत की सख़्त बंदिशों में कैद कर देती है। समाज इन फ़र्कों के आधार पर औरत को सम्मान और सज़ा सुनाता है। दायरों की पाबंदियों को तोड़ने पर औरत को अपराधी मानकर सज़ा-ए-मौत जैसे 'नैतिक' दंड देने में भी समाज को कोई हिचकिचाहट नहीं होती।

समय चलते नैतिक उद्घोषों व डर की राजनीति को पितृसत्तात्मक ढांचों में चुनाव दिया गया है। नैतिकता सत्ता की शतरंज का एक अहम मोहरा है। धर्म, राज्य, राजनैतिक समूह, छात्र राजनीति, जाति पंचायत, समुदाय सब नैतिकता का इस्तेमाल अपनी सत्ता मज़बूत करने के लिए, दूसरों को सत्ताहीन कर कगार पर धकेलने के लिए करते हैं।

नैतिकता - जीवन के हर पहलू में शामिल

नैतिकता हमारे जीवन के हर पहलू को छूती है। घर की चारदीवारी, काम के दायरे, बाहर की दुनिया कुछ भी इससे बाहर नहीं है। राज्य, पुलिस, न्यायालय, धर्म, राजनीति, प्रभावी धार्मिक समूहों के बयानों, कानूनों, आदेशों के ज़रिए इसका असर आंकते हैं। यह तय करती है कि हम टीवी, सिनेमाघर, थियेटर, कला व संस्कृति, अखबार व साहित्य में क्या देखें, क्या पढ़ें।

नैतिकता अक्सर घर से बाहर, सार्वजनिक दायरों में मौजूद औरतों पर सवाल उठाती है। काम के लिए घर की चौखट लांघने वाली हर औरत के चरित्र पर संदेह किया जाता है। कुछ पेशे जैसे शिक्षक, साध्वी, नन, पुजारी ज़्यादा 'नैतिक' माने जाते हैं। यौन कर्मी, सेक्रेटरी, अभिनेत्रियां, बार डांसर, नर्स आदि पेशों से जुड़ी औरतों को शक के साथ देखा जाता है। अगर काम के लिए औरत बाहर सफ़र पर जाती है, देर रात घर से बाहर रहती हो, कुछ ख़ास क़िस्म के कपड़े, मेकअप आदि का इस्तेमाल करे तो इसे अनैतिक समझा जाना आम रवैया है।

ठीक इसी तरह कुछ ख़ास समुदाय, जाति व नस्लों के ख़िलाफ़ भेदभाव, हिंसा व पक्षपात नैतिकता के दायरों को ध्यान में रखकर किया जाता है जैसे उत्तर-पूर्वी क्षेत्र, 'दूसरी' कौम की औरतें आदि।

समुदायों की इज़्ज़त का भी भार औरतें ढोती हैं। औरतों का यौन व्यवहार इस इज़्ज़त का मुख्य अस्त्र है। डायन प्रथा, कारोकारी, जबर्दस्ती विवाह, जाति पंचायतों के फतवे आदि के ज़रिए औरतों पर इज़्ज़त की बंदिशें थोपी जाती हैं। इन सीमाओं का विरोध औरतों पर भयानक हिंसा और शोषण का 'वैध' कारण माना जाता है।

राजनैतिक दायरों में 'अच्छी' व 'बुरी' औरत की छवि बिल्कुल साफ़ है। इस क्षेत्र में औरतों को एक ख़ास प्रकार का व्यवहार, आचरण, पहनावा अपनाना पड़ता है। साध्वी, शादीशुदा (साड़ी, सिंदूरधारी) या फिर एक पवित्र विधवा स्त्री का रूप इस नैतिक नियंत्रण का संस्थागत स्वरूप है। इस रूप से अलग कोई भी रूप को जायज़ व नैतिक नहीं माना जाता।

नैतिकता की परिभाषा में स्त्री व पुरुषों की यौनिकता के तय मायने होते हैं। 'प्राकृतिक यौन बर्ताव' सही व नैतिक माना जाता है। इसमें मर्दों का उग्र व स्त्रियों का कोमल यौन व्यवहार जायज़ माना जाता है। स्त्रीत्व व पुरुषत्व की इन धारणओं की झलक भाषा, कानून, मीडिया सभी क्षेत्रों में दिखाई देती है। जो यौन बर्ताव 'प्राकृतिक' माने जाते हैं वह विवाह के दायरे के भीतर, एक साथी विषमलैंगिक व केवल प्रजनन के लिए हैं। समलैंगिकता, विवाहपूर्व यौन संबंध, शादी के बाहर यौन संबंध, बहु-साथी यौन वगैरह के लिए कोई जगह नहीं है। इसे अप्राकृतिक या अनैतिक भी माना

जाता है। इसी प्रकार मातृत्व को नैतिक दर्जा व गर्भपात या बांझपन को अनैतिकता के पैमाने पर तोला जाता है।

रवैयों के साथ-साथ क़ानून और न्याय संरचनाओं में भी नैतिक-अनैतिक पूर्वाग्रह विद्यमान हैं। बलात्कार क़ानून, समलैंगिकता विरोधी अधिनियम, पसनर्ल लॉ आदि इसके उदाहरण हैं। क़ानून यह भी मानता है कि परिवार क़ानूनी दायरों से बाहर, व्यक्तिगत क्षेत्र हैं लिहाज़ा परिवार के अंदर यौन हिंसा, वैवाहिक बलात्कार आदि मुद्दों पर क़ानूनी नियम बनाने की ज़रूरत महसूस नहीं की जाती। पुलिस तथा क़ानून लागू करने वाली दूसरी संस्थाओं के बर्ताव में भी नैतिक दायरे बेहद संकुचित होते हैं।

नैतिक नियंत्रण के पुनर्उत्थान का दौर - क्यों?

आज हमारे आसपास अनेक बदलाव होते नज़र आ रहे हैं। हर वर्ग की औरतें सार्वजनिक स्थानों पर खुलेआम पाई जा रही हैं। आत्मविश्वास से भरी, बेबाक, ये औरतें समाज की प्रचलित धारणाओं को चुनौती देती हैं। ये अपने नियत दायरों से बाहर निकलकर समाज में एक सक्रिय भूमिका अदा कर रही हैं। वे अपनी पंसद के कपड़े पहनती हैं और ऐसा व्यवहार करने से ज़रा भी नहीं हिचकिचाती जिसे किसी ज़माने में 'बुरी औरत के बर्ताव' के रूप में नकारा जाता था। यानी 'अच्छी' व 'बुरी' औरत के फ़र्क़ धुंधलाते नज़र आते हैं।

इन तमाम परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए नैतिक घेराबंदी की नई तदबीरें सामने आई हैं, जो इस डर से उपजी हैं कि आज औरत सामाजिक नियंत्रणों की बाड़ तोड़कर बाहर निकल रही हैं। समाज के नैतिक ढांचों को संजोए रखने के लिए उसे दोबारा नियंत्रण में रखना बेहद ज़रूरी हैं यह सोच हमें यह मानने को मजबूर करती है कि जब-जब औरत शोषण, दबाव और अन्याय का प्रतिवाद करके अपने अधिकारों की मांग करती हैं, तब-तब उसे दायरों में कैद करने के लिए 'अनैतिक' करार दिया जाता है। एक तरफ औरतों के अधिकारों की भाषा और चेतना दोनों को अपनाया जा रहा है। वहीं दूसरी ओर महिला अधिकारों के मौके और दायरे धीरे-धीरे सिकुड़ते जा रहे हैं।

यह पुनर्उत्थान समाज में 'पश्चिमीकरण' के दौर में (जिसे मुक्त व्यापार, भूमण्डलीकरण व सैटेलाइट मीडिया, संचार व तकनीकी प्रगति से बढ़ावा मिलता है) 'भारतीय संस्कृति' को बचाये रखने की कोशिशों का एक पहलू है। इस भावनात्मक मुद्दे का इस्तेमाल विभिन्न समूह आम जनता, राजनैतिक दलों, धार्मिक समूहों को अपने फ़ायदों के लिए एकजूट करने के लिए करते हैं। हमेशा की तरह औरतों पर संस्कृतिक और परंपराओं को क़ायम रखने की ज़िम्मेदारी सौंपी जा रही है। इन आशंका से जूझने के लिए उनके आचरण और व्यवहार पर सख़्त अंकुश लगाकर, सीमाओं को पुनर्भाषित कर, मर्यादा तोड़ने पर सज़ा का फतवा जारी करने के मंसूबे गढ़े जा रहे हैं।

इस नैतिक पुनर्उत्थान का क्या असर है? धर्म निरपेक्ष माहौल का अभाव, बातचीत के अवसर की कमी, प्रजातंत्र, आज़ादी और अधिकारों को ख़तरा व उनका हनन, कट्टरवादी व फांसीवादी ताक़तों का धीमा पर सुनियोजित कब्ज़ा जो प्रगतिशील आंदोलनों के फ़ायदों को नकार देता है।

इस माहौल का दोहरापन सबसे ज़्यादा दिल दहलाने वाला होता है। कॉलेज में जींस/पैंट पहनने पर या खेल के मैदान में खेल की पोशाक पहनने पर गला फाड़कर चीखने वाले पुरुष दहेज हत्या और स्त्री भ्रूण हत्या के मामलों में मूक बेरुखी का रवैया अपनाते हैं। डांस बार में औरतों के नाचने को अश्लील कहने वाले मंत्री/नेता खुद पुलिस/सरकारी अफ़सरों के मनोरंजन के लिए, सामाजिक कार्यक्रमों में एक 'आइटम गर्ल' के नृत्य का लुत्फ़ उठाते नज़र आते हैं। वे औरतों जो एक अभिनेत्री के इस बयान पर कि शादी से पहले सुरक्षित यौन संबंध अपराध नहीं हैं पर ज़मीन-आसमान एक कर देतीं हैं, वहीं अपने आसपास यौन हिंसा के मुद्दे पर या प्रेमी द्वारा प्रेमिका के मुंह पर तेज़ाब फेंके जाने की वारदातों को आसानी से नज़रअंदाज़ कर देती हैं। यह नैतिकता के दोगले, धुंधले स्वभाव का सबसे पारदर्शी सबूत है।

हमारी नज़र में एक 'नैतिक' समाज का नारीवादी रूप क्या हो? वह जिसमें पुरुष यौन आतंक का इस्तेमाल औरतों को काबू में रखने के लिए न करते हो, जहां औरतों का महज होना या उनका वजूद शक़ के दायरों से परे हो। जहां नैतिक दबाव शोषण और पहरेदारी का हथियार नहीं हो बल्कि नैतिक के मायने न्याय, समानता और प्रजातंत्र से जुड़े हुए हों।

साभारः जागोरी नोटबुक 2006 में पूर्व प्रकाशित।